Semester: V - P - 306

हिन्दी निबंध (आदिकाल और मध्यकाल)

(1) हिन्दी साहित्य का आदिकाल

(2) आदिकालीन रासो साहित्य

(3) भक्तिकाल: स्वरूप और भेद

(4) भक्तिकालीन संत कवि

(5) युगदृष्टा कबीर

(6) हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य परंपरा

सूचना: युनिवर्सिटी परीक्षा में किन्हीं चार निबंध पूछे जायेंगे, किन्हीं दो निबंधों के उत्तर देने होंगे।

〈2〉 भक्तिकाव्य : स्वरूप और भेद :

〈1〉* भक्तिकाव्य का स्वरूप :

मध्यकालीन साहित्य की विस्तृत परम्परा को पूर्व-मध्यकाल तथा उत्तर-मध्यकाल : रीतिकाल के रूप में देखा जाता है। पूर्वमध्यकालीन या भक्तिकालीन साहित्य के विषय में बात करते हुए इसे हिन्दू जाति की हताशा

से उत्पन्न परिस्थितियों के फलस्वरूप प्रादुर्भूत माना जाता है। भक्ति वस्तुतः एक विराट् भाव है और निश्चित रूप से यह भारतीय संस्कृति के चिन्तन और भारतीय समाज के संस्कारों का विषय रही है। पराजय के कारण आत्म-विस्मृतिं और असंगठन का होना, इसका एक पक्ष हो सकता है, भक्ति-भावना के प्रसरण का कारण नहीं। यह एक लोक-विश्रुत धारा है, जो लोक की नैसर्गिक चेतना में संचरण करती है। अतः इस्लाम के आगमन का भक्ति-धारा पर प्रभाव माना जाता है; पर इस्लाम के प्रवेश को भक्ति के लिए कारण मानना भारतीय चिन्तन और संस्कारों की जड़ पर आघात करना होगा। आदिकालीन समय में वज्रयानी सिद्धों और नाथपंथी योगियों ने धार्मिक वितंडावाद खड़ा अवश्य किया, किन्तु उसका उद्देश्य जनता में लोकरंजनकारी धार्मिकता को उद्भूत करना न था। चमत्कार-प्रदर्शन की उनकी भावना, घट के भीतर चक्र, साधना, शून्य, समाधि, योग आदि ने जनता को धर्म के तंग गड्ढे में डाल दिया। भक्त कवियों ने धर्म को उस तंग गड्ढे से निकालकर जनता को धर्म के वास्तविक रूप से परिचित कराया। साहित्यिक विकास को क्रम से देखने पर अभिज्ञात होता है कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भक्ति को लोक-परम्परा के रूप में विकसित होते हुए देखने का आग्रह करते हैं। आचार्य शुक्ल की दृष्टि में वह हिन्दू जाति की पराजित मनोव्यथा व हताशा के कारण उत्पन्न हुई तथा ग्रियर्सन इसे बाह्य जाति का प्रभाव मानते हैं।

यहाँ विषय-वस्तु के द्वन्द्व में दो विद्वानों की विचारशीलता को लक्षित किया जा सकता है, जहाँ चिन्ता व चिन्तन की मूल धुरी समाज है। हाँ, विचार के स्तर पर भिन्नता है। भक्तिकालीन कवियों ने अपनी लोक-रंजनकारी काव्य-कला से जिस भक्ति का प्रवाह जन-जन के हृदय में संचारित कर दिया; आराध्य के शील, शक्ति व सौन्दर्य का वर्णन करके समग्र जनता के मन में उत्कंठा का भाव जागृत कर दिया; वह भक्ति, मात्र बाह्य जाति के प्रभाव से उद्भूत हुई हो; ऐसा तर्क करना निराधार है। अनेकत्व में एकत्व के भारतीय जीवन-दर्शन ने संस्काररूपा भक्ति को प्रकट में बनाए रखा था, उसे उद्भूत होने के लिए नैराश्य भाव ने सहायक कारण का कार्य किया है। हमें मानना चाहिए कि यहाँ इस्लाम की सांस्कृतिक टकराहट से उत्पन्न क्रिया-प्रतिक्रिया भी है और लोक-चेतना का आग्रह भी। इन्हीं के समाहार से भक्ति काल में भक्तिविषयक अनेक मतवादों का जन्म हुआ; जो अपनी बाह्य प्रकृति में नितान्त भिन्न होते हुए भी मूलतः एक ही सत्य एवं एक ही दर्शन तक पहुँचते हैं।

(2) भक्ति काव्य : एक आंदोलन :

भक्ति के सन्दर्भ में एक बात को ध्यान रखना चाहिए कि यहाँ भक्ति धर्म का विषय कम है, आन्दोलन अधिक। यह लोक में सामाजिक समरसता, जागृति तथा स्त्रियों की भूमिका पर विचार करने का मंच है जो चेतना को चिन्तनपरक करने का कारण बनती है। भक्त कवियों ने ईश्वर को केन्द्र में रखा था। सामाजिक मर्यादा और सामाजिक एकीकरण को विकास का मंत्र बताया। यह भक्त कवियों की लोकोन्मुखता है। जगत मिथ्या नहीं, वास्तविक है। धर्म का अर्थ योगबलयुक्त अंतस्साधना नहीं, आत्म-शुद्धि है। भक्ति काल के विविध सम्प्रदाय व मतवाद इसी धारणा को पुष्ट करते हैं।

पूर्व-मध्यकालीन साहित्य में भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं। निर्गुण भक्ति धारा एवं सगुण भक्ति धारा, जिन्हें पुनः क्रमशः ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखा या सन्त एवं सूफी काव्य-धारा तथा रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा के रूप में वर्गीकृत किया गया। भक्ति की इन दोनों मूल धाराओं में ईश्वरीय चिन्तन, समर्पण, प्रेम, अगाध विश्वास, तन्मयता, एकनिष्ठता तथा संसर्ग का भाव मिलता है। राम निर्गुण हो या सगुण, वे सामाजिकता से ओतप्रोत हैं, कृपालु हैं, दीनों पर दया करने वाले हैं तथा करुणामय हैं। धर्म के इस एकदेशीय वातावरण में सभी समान हैं फिर चाहे सामाजिक रीति-नियमों में कट्टर वर्णाश्रम व्यवस्था ही क्यों न हो। धर्म यहाँ चेतना के प्रवाह का कार्य करता है। यह मात्र साधना-पद्धति नहीं है अपितु आन्दोलन है। यह आन्दोलन निम्न जातियों के संघर्ष को भी दिखाता है, वर्णाश्रम व्यवस्था के विषय में तर्क देता है और स्त्रियों को भी अपने अस्तित्व का बोध कराता है। भक्तिकाल में अंडाल और मीरा कवयित्रियाँ थीं। मीरा ने तद्‌युगीन सामाजिक परिस्थितियों में कृष्णभक्ति को अपनाकर सामाजिक मंथन का कार्य किया।

(3) * भक्ति काव्य का विकास :

सामाजिक मंथन की प्रक्रिया के पीछे रामानुजाचार्य का वैचारिक उन्मेष था। वे न तो शंकराचार्य के समान जगत को मिथ्या मानते थे और न ही बौद्धों के शून्य दर्शन में उनका कठोर विश्वास था। उनके विशिष्टाद्वैतवाद में जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीनों को सत्य माना गया है। प्रेमरस माधुरी से ओत-प्रोत इस भक्ति-भावना ने दक्षिण में जन्म लेकर समूचे उत्तर भारत को समेट लिया। कहा जाता है कि भक्ति को दक्षिण से उत्तर में रामानन्द लाए। गुजरात में स्वामी मध्वाचार्य ने द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना की। उन्होंने जीव और ब्रह्म में सेवक-सेव्य भाव का सम्बन्ध माना तथा उन्हें पृथक माना।

महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टि सम्प्रदाय में भगवान के अनुग्रह से भक्ति प्राप्ति की बात कही गई। उन्होंने राधा-कृष्ण की भक्ति को प्रधानता दी। इसे भक्त कवियों की विचारशीलता का ही परिणाम माना जाना चाहिए कि इतनी बड़ी सैनिक टकराहट के बावजूद सांस्कृतिक टकराहट नहीं हुई। सांस्कृतिक टकराहट का रूप हमें पुनर्जागरण युग में दिखाई देता है जहाँ धार्मिक आन्दोलन के बन्धन शिथिल हैं और विदेशी आक्रान्ताओं की दृष्टि अर्थ तक ही सीमित है। ऐसे में भारतेन्दु युगपुरुष के रूप में उभरते हैं और चेतना के प्रवाह को बुद्धि तत्त्व से गति देते हैं। अन्त में भावना का स्थान बुद्धि ने ले लिया।

(4) * भक्ति काव्य के भेद : (1) निर्गुण भक्ति धारा। --
(2) सगुण भक्ति धारा --

(क) **निर्गुण भक्ति धारा** : निर्गुण भक्ति धारा के अन्तर्गत ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखाएँ या सन्त एवं सूफी साधकों को परिगणित किया जाता है। कबीर आदि निर्गुण सन्तों के साहित्य को ज्ञानाश्रयी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि इस शाखा में भारतीय वेदान्त, योग-साधना और ज्ञान पर अधिक बल है। इन्होंने सूफियों की प्रेम-साधना को भी अपनाया; किन्तु उसका प्रेममार्गी शाखा के कवियों के समान विशुद्ध चित्रण नहीं कर सके।

(1) ज्ञानाश्रयी शाखा: निर्गुण पंथ के प्रवर्तन का श्रेय नाथपंथी योगियों और महाराष्ट्र के भक्त नामदेव को दिया जाना चाहिए। किन्तु निर्गुण पंथ को व्यवस्थित रूप कबीरदास से प्राप्त हुआ। निर्गुणपंथी साधकों ने बाह्याचार, धर्माडम्बर, साम्प्रदायिकता, सामाजिक असमानता, कर्मकाण्ड आदि का विरोध किया। वे ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप की उपासना करते थे। इन्होंने आत्मा को स्त्री रूप में तथा परमात्मा को पुरुष रूप में चित्रित किया है। कहीं-कहीं इन पर सूफी साधकों का प्रभाव लक्षित होता है। प्रमुख निर्गुणपंथी कवि हैं :

कबीर

कबीर की उत्पत्ति, जन्म एवं जीवन के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। जनश्रुति है कि इनका जन्म विधवा ब्राह्मणी से हुआ था जो लोक-लाज के भय से इन्हें लहरतारा तालाब के निकट छोड़ गई थी। नीरू-नीमा नामक जुलाहा दंपति ने इनका पालन-पोषण किया। कबीर ने रामानन्द को अपना गुरु माना और उनसे राम-नाम की दीक्षा ली। कुछ लोग शेख़-तक़ी को भी इनका गुरु बताते हैं। कबीर का जन्म संवत् 1455 विक्रमी तथा मृत्यु

संवत् 1575 विक्रमी में मगहर में मानी जाती है।

कबीरदास ने सामाजिक भेद को समाप्त करने के लिए राम-नाम का प्रचार किया। उनके 'राम' सगुण-साकार नहीं हैं, वे सर्वव्यापक हैं, निर्गुण, निराकार, अद्वितीय हैं। वे हृदय में निवास करते हैं। कबीर मनुष्य के अस्तित्व में विश्वास करते हैं और सामाजिक भेद-भाव मिटाने के लिए सचेत हैं। कबीर समाज में सबसे पहले आगे आकर सामाजिक विद्रूपताओं, धर्म के ठेकेदारों, कुरीतियों, कर्मकाण्डों को चुनौती देते हैं। कबीर मुँह पर आलोचना करने में माहिर हैं। उनके प्रश्नों को सुनकर शास्त्रज्ञ पण्डित तक अचल नहीं रह पाते। कबीर के प्रश्न तिलमिला देने वाले होते हैं। वेदान्ती हो या योगी, कबीर उससे उसी की भाषा में प्रश्न करते हैं—

1. गहना एक कनक तें गहना, इन महँ भाव न दूजा।
   कहन सुनन को दुई करि थापिन, इक निमाज इक पूजा।।
2. पानी महँ पावक बरै, अंधहि आँखिन्ह सूझै।।
3. गाय तो नाहर को धरि खायो, हरिना खायो चीता।
4. नैया बिच नदिया डूबती जाय!
5. ठाडा सिंह चरावै गाय!

कबीर की भाषा पूरबी है जिस पर राजस्थानी का बहुत प्रभाव है। कहीं-कहीं पंजाबी, खड़ी बोली और ब्रजभाषा भी व्यवहृत हुई है। कबीर की रचनाएँ तीन रूपों में मिलती हैं—रमैनी, सबद, साखी। उनकी रचनाओं में अन्तस्साधनात्मक अनुभूतियाँ भी हैं और सूफियों का प्रेम तत्त्व भी। कबीर के राम न तो अवतार लेते हैं और न लीला करते हैं, अपितु वे मनुष्य के अंतःकरण को शुद्ध करते हैं। कबीर मुल्ला और पण्डित को समान रूप से फटकारते हैं, क्योंकि वहाँ धार्मिक कर्मकाण्ड एवं भेद-भाव है। कबीर मानते हैं कि धर्म सामाजिक समरसता का माध्यम है। मानुस-धर्म के विश्वासी कबीर अपने सामाजिक सरोकारों के कारण ही बड़े कवि हैं। ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्य कवियों में गुरु नानक, दादू दयाल, सुन्दरदास, रैदास, मलूकदास, रज्जब, दरिया साहब आदि विशेष हैं।

(२) **प्रेममार्गी शाखा**:-प्रेममार्गी शाखा के निर्गुण कवियों ने प्रेम-तत्त्व के माध्यम से ईश्वर-प्राप्ति की बात कही है। इनका आधार पूर्णतः लौकिक है। इन्होंने ईश्वर को स्त्री रूप में तथा आत्मा को पुरुष रूप में दिखाया है। इनके

काव्य में रागात्मक तत्त्व ज्ञान तत्त्व की अपेक्षा अधिक है। मुख्यतः सूफी कवियों ने लोक प्रचलित कथाओं के आधार पर आध्यात्मिक प्रेम-तत्त्व को समझने का प्रयास किया है। सूफी कवियों ने फारसी की मसनवी शैली के आधार पर रचनाएँ की हैं। इसमें भारतीय वेदान्त और भावनात्मक रहस्यवाद की झलक दिखाई देती है। प्रेम की पीर युक्त इन रचनाओं में विप्रलम्भ शृंगार के मर्मस्पर्शी दृश्य मिलते हैं। प्रमुख सूफी कवि हैं :

मलिक मुहम्मद जायसी

सूफी काव्यधारा में मलिक मुहम्मद जायसी अपनी रचना 'पद्मावत' के कारण सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। 'पद्मावत' के अतिरिक्त इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं—'अखरावट' और 'आखिरी कलाम'। जायस नामक स्थान में रहने के कारण ये जायसी कहलाए। प्रसिद्ध सूफी-फकीर शेख़ मोहिदी इनके गुरु थे। कबीर ने साम्प्रदायिकता के विरुद्ध अपने व्यक्तित्व को रखा और अपने कृतित्व के बल पर जायसी साम्प्रदायिकता के विरुद्ध खड़े हैं। मुसलमान कवि—और हिन्दू कथा का आधार—कैसा विलक्षण संयोग है। मनुष्य होने के लिए इनके अतिरिक्त प्रेम-तत्त्व और चाहिए था; सो जायसी प्रेम की पीर के अमर गायक हैं। जायसी के अक्षय-यश का आधार उनकी अमर कृति 'पद्मावत' है। 'पद्मावत' में जायसी ने जिस लोक कथा को आधार बनाया है, उसमें ऐतिहासिकता और कल्पना का सुयोग है। कथा का पूर्वार्द्ध लोक प्रचलित कथानक को आधार बनाकर चला है तथा यथार्थता की झलक कविता के उत्तरार्द्ध में है, जिसका आधार ऐतिहासिक है। कवि ने भौतिक कष्टों के माध्यम से आध्यात्मिक साधना को रेखांकित किया है। पूरी कविता समासोक्ति है तथा इसमें शृंगार-रस प्रमुख है। ग्रंथ की समाप्ति पर कवि ने कहा है—

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा।।
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धन्धा। बांचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू।।

ऐसा आभासित होता है कि कवि पूरी कविता को रूपक में ढाल देना चाहता हो। किन्तु कविता के आद्योपान्त पठन से स्पष्ट होता है कि कविता में रूपक का सफल निर्वाह नहीं हो सका है। संभव है छंद प्रक्षेपित हो।

अध्यात्म का रूप देकर कविता के प्रभाव को कम करने का प्रयास है। 'पद्मावत' भारतीय मानस परम्परा के अनुकूल एक लौकिक कृति है। जायसी की दृष्टि मनुष्य पर ही केन्द्रित रही है। वे मानुष प्रेम की बात करते हैं—'मानुष प्रेम भयो बैकुण्ठी'। समसीतल मन होने पर ही मानुस प्रेम बैकुण्ठी हो सकता है। प्रेम तत्त्व के माध्यम से ही समरसता को पाया जा सकता है। मानो जायसी यह कहना चाहते हों कि प्रेम साधना का विषय है, संसार प्रेममय है। साधना में स्वार्थ, छल, कपट, बेईमानी के लिए अवकाश नहीं मिलता। अलाउद्दीन ऐसा लोभी है जो सब कुछ पा लेना चाहता है और अन्त में उसका सत्य—एक मुट्ठी राख है। प्रेम की निस्वार्थता और रत्नसेन सी उदात्तता ही सामाजिक एकीकरण में सहायक हो सकती है। अन्य सूफी कवि हैं—कुतुबन, मंझन, शेख नबी, कासिमशाह, नूर मुहम्मद आदि।

(ख) **सगुण भक्ति धारा**—ईश्वर के सगुण, साकार रूप को लेकर काव्य रचना में प्रवृत्त होने वाली धारा सगुण काव्य धारा कहलाई। इन कवियों ने ईश्वर को अवतार रूप में वर्णित किया है। ये मानते हैं कि लीला के लिए प्रभु ने मनुष्य रूप धारण किया है और वे संत, मुनि, दीनों के रक्षण के लिए भू-लोक पर आते हैं। वे दीनदयाल हैं, कृपालु हैं, गरीब नेवाज हैं, प्रेमस्वरूप हैं। सगुण काव्य धारा को दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया—रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा। राम और कृष्ण विष्णु के अवतार हैं। वैष्णव मत का मूल सिद्धान्त भक्ति है। यह भक्ति मार्ग नारायण को ईश्वर मानकर चला है। भगवान विष्णु भक्तों के काज हेतु भाँति-भाँति के रूप में अवतरित होते हैं। राम के चरित्र की महिमा का गान करने वाली शाखा राम-भक्ति शाखा है और कृष्ण की लीलाओं का गान कृष्णभक्त कवियों ने किया है। रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं :

(1) राम भक्ति शाखा :

तुलसीदास

भक्तशिरोमणि महाकवि तुलसीदास स्वामी रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में हुए। जन-जन के हृदय में रामभक्ति की चेतना का प्रसरण इन्हीं के प्रयासों से हुआ। तुलसी रामभक्त कवि हैं। गोस्वामी जी का जन्म संवत् 1589 विक्रमी में बांदा जिले के राजापुर ग्राम में माना जाता है। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। जनश्रुति है कि अभुक्तमूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था। कवितावली और विनयपत्रिका में ऐसा संकेत मिलता है कि माता-पिता से

परित्यक्त हो इन्होंने भिक्षाटन भी किया था—

1. मातु-पिता जग जाय तज्यो, बिधिहू न लिख्यो कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकनि लागि ललाई।।

—कवितावली

2. द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।
तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ।

—विनयपत्रिका

इनके गुरु का नाम नरहरिदास था। जनश्रुति है कि अपनी पत्नी रत्नावली के परुष वचन सुनकर इन्हें संसार से विरक्ति हो गई और इनका लौकिक प्रेम भगवद्भक्ति में बदल गया। गोस्वामी जी की प्रमुख रचनाएँ हैं—रामचरितमानस, विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली, दोहावली, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, रामलला नहछू आदि। इन्होंने संवत् 1631 विक्रमी में अयोध्या में रामचरितमानस का प्रणयन आरम्भ किया तथा 2 वर्ष 7 माह में इसे पूरा किया। इनकी मृत्यु के विषय में यह दोहा मिलता है :

संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो सरीर।।

अपनी रचनाओं में तुलसीदास ने श्रीराम का गुणगान किया है। तुलसी के राम सर्वाधिक उदार हैं। वे संकोची हैं, कृपालु हैं, दीनदयालु हैं, करुणानिधान हैं, परदुःखकातर हैं। वे मनुष्य होकर भी ब्रह्म हैं और ब्रह्म होकर भी मनुष्य हैं। मनुष्यों की भाँति संघर्ष करते हैं, दुःखी होते हैं, विजय प्राप्त करते हैं। ब्रह्म की तरह लीला करते हैं। मनुष्य को करुणा, मोह, दया, प्रेम की शिक्षा देने के लिए मनुज रूप धरते हैं। तुलसी के राम लोकोपकारक हैं। वे अपने युग के संघर्षों से निर्मित हैं। तुलसी समाज को लेकर जागरूक हैं। वे कलियुग का वर्णन करते हैं। कलियुग में जो गाल बजाता है, वही पण्डित कहलाता है, यहाँ भूखे को अनाज नहीं मिलता और चाकर को चाकरी नहीं मिलती, सभी दुःखी हैं, संतप्त हैं। तुलसी इन सबके परिहार के लिए राम की शरण में जाने को कहते हैं। रामराज्य की परिकल्पना तुलसी ने की है। रामराज्य में सभी सुखी हैं, किसी को कोई दुःख, क्लेश-कष्ट नहीं है। सभी निरोगी हैं, दीर्घायु हैं, कोई चोरी नहीं करता, किसी को दण्ड नहीं मिलता। वास्तव में भक्तिकालीन कवि धर्म के

स्तर पर सभी को समान मानते हैं। तुलसी वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध नहीं करते, अपितु कहते हैं कि रामराज्य में सभी अपने-अपने धर्म के अनुसार आचरण कर रहे हैं। यह तुलसी का मध्यम मार्ग है, धार्मिक समानता और समरसता के लिए एक दिशा है। ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर तुलसी का समान अधिकार था। तुलसी ने अवधी को विशुद्ध साहित्यिक रूप प्रदान किया। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है। निर्गुण मार्गी काव्यधारा साधनाप्रधान होने से उपदेशात्मक या सुधारात्मक रही है। वहाँ लोकधर्म को स्थान नहीं मिला। तुलसी के काव्य में लोक और शास्त्र का; शिव और विष्णु का; कर्म और ज्ञान का विलक्षण समन्वय हुआ है। कथा-सूत्र की एकता के निर्वाह के साथ-साथ मार्मिक स्थलों का चित्रण करने में तुलसी ने अद्भुत कौशल दिखाया है।

(2) **कृष्णभक्ति शाखा** : सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास, नन्ददास रूपी अष्टछाप की आठ वीणाओं ने समस्त भारतीय समाज को अभिभूत कर दिया। कृष्णभक्ति शाखा के इन कवियों ने अपनी बानी में कृष्ण की लीला का गान किया है। श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं। वे ही सत्, चित्, आनन्द स्वरूप हैं। प्रेमलक्षणा भक्ति से ही कृष्ण प्रसन्न होते हैं और भक्ति में प्रवृत्त होने के लिए भगवत् कृपा आवश्यक है। यही कृपा पोषण या पुष्टि कहलाती है। इसी कारण वल्लभाचार्य ने जिस उपासना पद्धति का वर्णन किया वह 'पुष्टि मार्ग' कहलाई। इस शाखा के प्रमुख कवि/कवयित्री हैं :

सूरदास

सूरदास का जन्म संवत् 1535 विक्रमी में सीही नामक ग्राम में माना जाता है। ये कृष्णभक्त कवि थे। आरम्भ में उनकी भक्ति सेवक-सेव्य भाव की थी। परन्तु बाद में वह वल्लभाचार्य से प्रभावित होने के कारण सख्य भाव में ही परिणत हो गई। सूर की विशेषता है कि उन्होंने मुक्तक के माध्यम से परिवारिक जीवन का पूरा चित्र खींचा है। वे गृहस्थ जीवन के मनोहर दृश्य दिखाने में सफल रहे हैं। उनकी सफलता वात्सल्य के मार्मिक प्रसंगों में अधिक उजागर होती है जहाँ वे व्यंग्य और आत्मीयता का विस्मयकारी संयोग करते हैं—'को माता को पिता हमारैं' में जितना व्यंग्य है, उतनी ही आत्मीयता भी। सूर के अनुसार मोक्षप्राप्ति का एकमात्र मार्ग भक्ति मार्ग है। भक्ति का स्थान

योग और वैराग्य से भी ऊँचा है। उनके अनुसार भगवान का निर्गुण स्वरूप सुगम नहीं है। अतः सगुण लीला पद का गायन ही अधिक प्रिय है। सूर सहृदय भक्त थे। इनके पदों का संग्रह 'सूरसागर' ग्रंथ में मिलता है। उनकी काल्पनिकता, रसात्मकता, व्यंग्य वैभव और सरसता बेजोड़ है—

राधा नैन नीर भरि लायी।
कबधौं समय मिलैं सुन्दर सखि, जदपि निकट है आयी।
कहा करौं, केहि भाँति जाऊँ अब, पेखहि नहि तिनपायी।
सूर स्याम सुन्दर घन दरसे तन की ताप नसायी।

मीराबाई

मीराबाई का जन्म संवत् 1555 विक्रमी में कुड़की नामक ग्राम में माना जाता है। ये उदयपुर के महाराज भोजराज की रानी थीं—

ईडरगढ़ का आया ओलेबा।
भाभी मीरा लाजे गढ़ चित्तौड़।

आरम्भ से ही इनके मन में कृष्ण के प्रति अटूट भक्ति थी। मीरा ने माधुर्य भाव से कृष्ण की उपासना की। ये भगवान कृष्ण को ही अपना सर्वस्व समझती थीं। इनके गीतों में विरह, मिलन, विनय, वन्दना, लीला, उपालम्भ, प्रीति आदि अनेक विषय मिलते हैं। परिणय के केवल सात वर्ष बाद लगभग 25 वर्ष की अवस्था में इनके पति का निधन हो गया। अब मीरा के लिए गिरिधर के अतिरिक्त अन्य आश्रय न था। इनकी माता का देहान्त तो इनके बाल्यकाल में ही हो गया था। मीरा बचपन से भक्ति-भावना में पूर्ण हैं। पति की मृत्यु के बाद संसार से विरक्त मीरा कृष्ण की मोहिनी मूरत में अनुरक्त होने लगीं, उससे रीझतीं, उसके ध्यान में डूबी रहतीं, तल्लीन रहतीं तथा आवेग में आकर मन्दिर में कृष्ण की मूर्ति के समक्ष नृत्य करतीं। मीरा ने कृष्ण के सौन्दर्य, उनकी बाल-लीला एवं उनकी भक्त-वत्सलता सम्बन्धी अनेक पद लिखे हैं। वास्तव में मीरा की भक्ति कान्ता भाव की होने के कारण माधुर्य भक्ति है। कृष्ण पर आसक्त होकर कहीं वे 'चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत' कहती हैं तो कहीं 'दरसण कारण भइ बावरी' कहती हैं और कहीं साँवरे की दृष्टि को प्रेम की कटारी कहती हैं। प्रेम में वियोग के दृश्यों का भी उन्होंने

मार्मिक वर्णन किया है। रूढ़िवादी, जर्जर समाज इसे किस प्रकार सहन कर सकता था कि एक राजघराने की कुलवधू इस प्रकार स्वेच्छापूर्वक व्यवहार करे। मीरा ने ऐसे समय में कृष्ण की भक्ति पें अनुरक्ति दिखाकर समाज को चुनौती दी और मानो स्त्री की स्वाधीनता के प्रश्न को समाज के समक्ष खड़ा कर दिया। वर्षों से पीड़ित नारी के शोषण के विरुद्ध आवाज़ करने वाली पहली स्त्री मीरा थीं।

पोइन्ट नम्बर 4: भक्ति काव्य के भेद में लिखो।

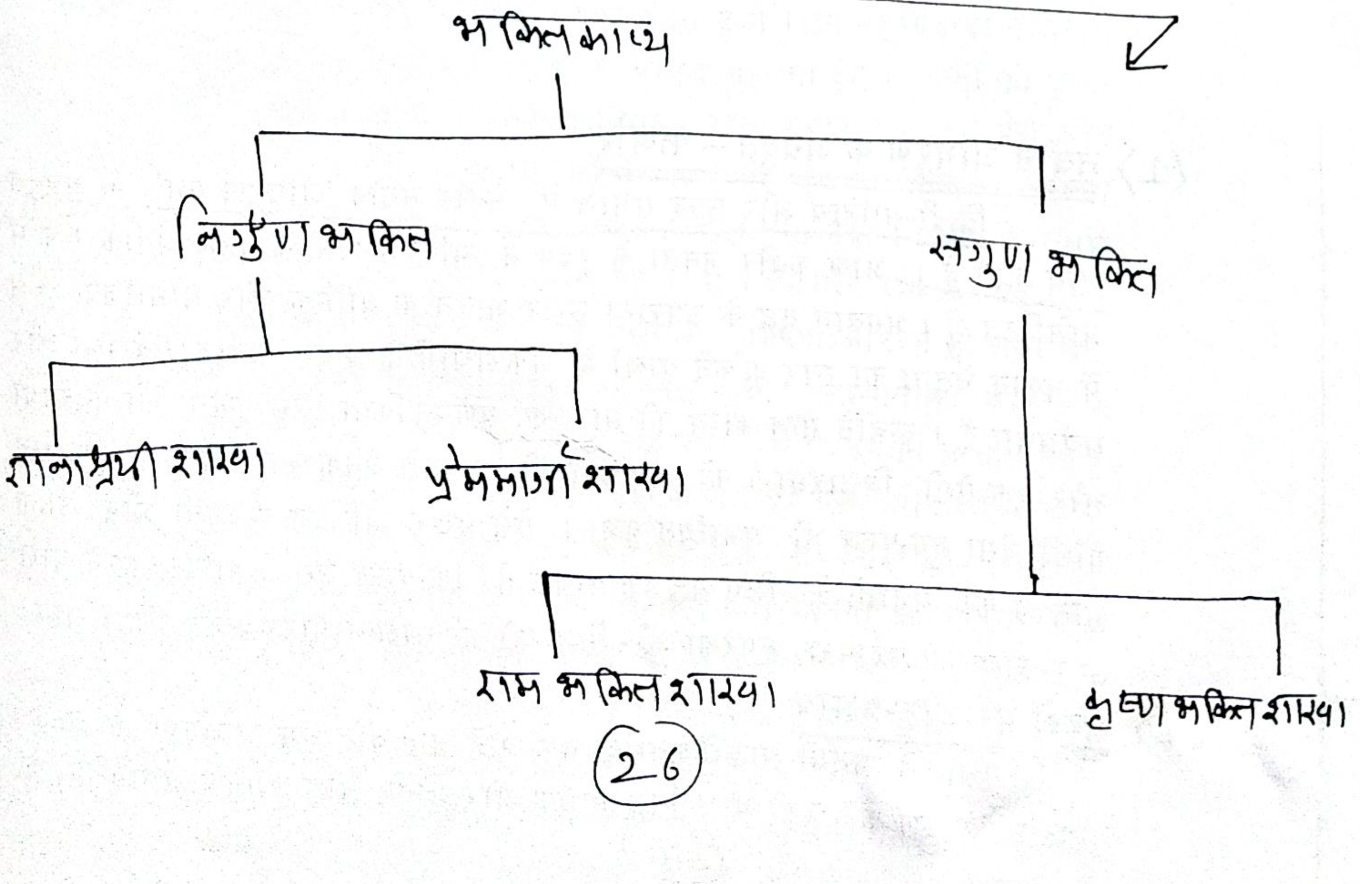

[2] भक्तिकाव्यः स्वरूप और भेद

"भक्ति द्राविड उपजी लाये रामानन्द,
परगट किया कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड।"
--कबीर

भक्तिकाल-- हिन्दी साहित्य के सुवर्ण-युग के रूप में पहचाना जाता है। इसका समय संवत् 1375 से लेकर 1700 तक माना जाता है। इस काल को पूर्व मध्यकाल भी कहते हैं। पूर्व मध्यकालीन साहित्य में भक्ति की दो धाराएँ प्रस्फुटित और पल्लवित हुई–निर्गुण भक्तिधारा और सगुण भक्तिधारा। भक्तिकाल की इन दोनों धाराओं में ईश्वरीय चिन्तन, समर्पण भाव, प्रेम, अगाध विश्वास, तन्मयता, एकनिष्ठता का भाव मिलता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–

> "भक्ति वस्तुतः एक विराट भाव है और निश्चित रूप से यह भारतीय संस्कृति के चिन्तन और भारतीय समाज के संस्कारों का विषय रही है।"
>
> [पुस्तक का नामः हिन्दी साहित्य की भूमिका]
> [लेखक का नामः आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी]

00 भक्तिकाव्य स्वरूप और भेदः

00 निष्कर्षः

इस प्रकार भक्ति के संदर्भ में एक बात को ध्यान में रखना चाहिए कि यहाँ भक्ति धर्म व विषय कम है, आन्दोलन का अधिक। भक्तिकाल के विविध सम्प्रदाय व मतवाद इसी धारणा व पुष्ट करते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–

> "भक्तिकाव्य केवल उपादेयता और मानव कल्याण के कारण ही स्पृहणीय नहीं है, इसमें काव्य-सौंदर्य भी है, और वह भी अत्यन्त उच्च कोटि का।"
>
> [पुस्तक का नामः हिन्दी साहित्य की भूमिका]
> [लेखक का नामः आचार्य हजारीप्रराद द्विवेदी]